Content

1.	वैज्ञानिक सोच का महत्व *वसीम अनवर*	1-7
2.	असंगघोष की रचनाधर्मिता में नारी *आशा*	8-15
3.	हिंदी – भाषा अथवा शैली *मीनाक्षी व्यास*	16-20
4.	मुंशी प्रेमचंद कें उपन्यासों में वर्णित किसानों की समस्याएं *निवेदिता पाराशर & सोनिया यादव*	21-26
5.	अस्तित्ववाद में मानव स्वतंत्रता की अवधारणा *आनंद दांगी*	27-32
6.	ग्रामीण प्रवासी छात्रों की सांस्कृतिक समस्याओं का अध्ययन (सागर शहर के संदर्भ में) *दीप्ती पटेल & सुनील साहू*	33-48
7.	प्रभा खेतान का उपन्यास 'पीली आँधी' और 'प्रवासी मारवाड़ी' *दीपन कुमारी & पिंकी पारीक*	49-53
8.	भारतीय नाट्य परंपरा और संगीत *शुभम कुमार सेन*	54-59
9.	A Study of Cost Control Mechanisms and Their Impact on Organizational Efficiency *Udit Malaiya*	60-65
10.	Current Trends in Library and Information Science Research in Central Universities in India (2019-2023) *Pushpendra Dangi & Jitendra Kumar Gupta*	66-73

11.	An Introduction Cloud Computing and E- Library Services *Jitendra Kumar Gupta, Puspendra Singh Dangi & Deepika Vishwakarma*	74-82
12.	Diversity and Distribution of Arbuscular Mycorrhizal Fungal Association in some Medicinal Plants of Satpura Region of MP *Mahendra Kumar Mishra & Archana Mishra*	83-98
13.	Bibliometric Study of DESIDOC Journal of Library & Information Technology (2020-2023) *Vishal Singh Lodhi, Ramsingh Chauhan, Priya Barman & Vipin Kumar Chouhan*	99-107
14.	Unlocking the Mushroom's Potential for their Biochemicals and Market Values *Smita Mishra, Mahendra Kumar Mishra & Deepak Vyas*	108-143
15.	Current Status of Geographical Indications (GIs) in Madhya Pradesh, India: Challenges of Infringement and Strategies for Protection *Manish Bardia & Anupi Samaiya*	144-159
16.	An Analytical Examination of the Implications of Article 342 on the Construction and Representation of Tribal Identity in India *Vishal Tiwari*	160-169
17.	A Study of Acharya Shree Vidyasagar Gurudev’s Contribution to Girls' Education in India: An Overview *Mudit Malaiya*	170-175
18.	Art Based Pedagogy: Explorations, Experiences and Reflections *Harpreet Kaur Jass*	176-183

The Journal of Scientific Discourse
International, Multi-Disciplinary Peer-Reviewed Quarterly Research Journal
https://gaveshana.org/the-journal-of-scientific-discourse/

Vol-2, Issue-1
Jan-Mar 2025
ISSN: 3049-0081 (Print)

वैज्ञानिक सोच का महत्व

वसीम अनवर

उर्दू विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर–470003, म.प्र., भारत

Email: wsmnwr@gmail.com

शोध सारांश: *– वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अभाव ही अंधविश्वास को बढ़ावा देता है। अंधविश्वास हमारे समाज और दुनिया के लिए बेहद खतरनाक है इसलिए समाज से अंधविश्वास को खत्म करना भारत के नागरिकों का प्राथमिक कर्तव्य है। अंधविश्वास वह अंधकार है जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण के प्रकाश में जड़ से समाप्त हो जाता है। अक्सर देखा जाता है कि पढ़े–लिखे और तकनीकी लोग भी अंधविश्वासी होते हैं, ऐसा इसलिए संभव है क्योंकि वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से कोई सीधा संबंध नहीं है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण का क्षेत्र बहुत व्यापक है इसलिए इसे विज्ञान से अधिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण को बढ़ावा देने वाला कहा जाता है।*

मनुष्य एक विकासशील सामाजिक प्राणी है। उसने प्रकृति से संघर्ष करके अपना अस्तित्व बनाए रखा है और पशु से लेकर आदिम अवस्था तक उसने दिन–प्रतिदिन समस्याओं का सामना करते हुए अपने ज्ञान में वृद्धि की है आज का बच्चा समाज में अपने अनुभवों और अवलोकनों के माध्यम से सीखता है, जो एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, जिसका असर दोस्तों और शिक्षकों की सोच पर पड़ता है। विचार विकसित होता है लेकिन जब हम विज्ञान को जानते हैं तो पारंपरिक सोच की प्रभावशीलता के कारण विज्ञान किताबों तक ही सीमित रह जाता है। अब वही समाज विकास के पथ पर अग्रसर होगा जो वैज्ञानिक सोच अपनाकर अपना जीवन व्यतीत करेगा।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण और उसके महत्व को समझते हुए पंडित जवाहर लाल नेहरू ने विचार व्यक्त करते हुए कहा: समाज का प्रत्येक वर्ग ज्ञानवान हो। उसमें ज्ञान–विज्ञान के आधार पर तर्क करने की शक्ति हो। कोई किसी की कही और सुनी हुई बातों पर विश्वास न करे बल्कि स्वयं के अवलोकन और विश्लेषण के आधार पर वैज्ञानिक ढंग से अपनी बात को रखे।[1]

डॉ. नटराजन पंचापकेसन वैज्ञानिक दृष्टिकोण को परिभाषित करते हुए लिखते हैं: वैज्ञानिक दृष्टिकोण का मतलब होता है प्राकृतिक विज्ञान के अलावा अन्य क्षेत्रों जैसे सामाजिक और नैतिक मामलों में वैज्ञानिक तरीकों का उपयोग करना। वैज्ञानिक दृष्टिकोण हासिल करना मानव व्यवहार में परिवर्तन लाता है और इसलिए यह प्राकृतिक विज्ञान का हिस्सा नहीं है। यह प्राकृतिक विज्ञान का अध्ययन करने से नहीं बल्कि वैज्ञानिक तरीकों को मानव व्यवहार में अमल करने से मज़बूत होता है।[2]

वैज्ञानिक सोच के महत्व को समझते हुए इसे हमारे संविधान में मौलिक कर्तव्यों में शामिल किया गया है। भारत के संविधान के भाग IV ए के अनुच्छेद 51ए में निहित मौलिक कर्तव्यों में से एक के अनुसार,

The Journal of Scientific Discourse
International, Multi-Disciplinary Peer-Reviewed Quarterly Research Journal
https://gaveshana.org/the-journal-of-scientific-discourse/

Vol-2, Issue-1
Jan-Mar 2025
ISSN: 3049-0081 (Print)

असंगघोष की रचनाधर्मिता में नारी

आशा
शोधार्थी, सोबन सिंह जीना, विश्वविद्यालय, परिसर, अल्मोड़ा– 263601, उत्तराखंड
Email – aishasaini846@gmail.com

शोध सार :– *समकालीन दलित कविता के सुप्रसिद्ध रचनाकार असंगघोष की सर्जनात्मकता का प्रमुख सरोकार समतापर तथा न्याय आधारित समाज निर्माण है। उच्च पदासीन होते हुए भी इन्होंने अपने समाज और स्त्रियों के अधिकार के लिए साहित्य रच दिया। यह आलेख असंगघोष के रचना कर्म एवं उनकी वैचारिकी को प्रदर्शित करता है। इन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से स्त्री का संघर्ष एवं त्याग को चित्रित किया है। इन्होंने स्त्री को कोमलांगी के रूप में प्रदर्शित नहीं किया वरन् उसे वास्तविकता के रूप में प्रदर्शित किया है। अपने परिवार एवं बच्चों के लिए किए गए नारी के संघर्ष को प्रदर्शित किया है। लेखक ने अपने समाज की स्त्रियों के पारंपरिक कार्यों को करते हुए होने वाली परेशानियों का न केवल वर्णन किया है वरन् उससे मुक्ति का रास्ता भी अपनी कविताओं में बताया है। कहने के लिए नारी देवी स्वरूपा लक्ष्मी का रूप होती है; लेकिन वास्तविकता के धरातल पर उसे कौन सा दर्जा प्राप्त है। इसका चित्रण भी वह अपने लेखन में करते हैं।*

बीज शब्द :– *असंगघोष, दलित साहित्य, हिंदी साहित्य, नारी चेतना, शिक्षा जागृति, रूढ़ियों का खंडन, स्व की पहचान, मुक्ति का मार्ग, संघर्ष, विद्रोह, आक्रोश, परंपरागत कार्य, गरीबी, बेबसी अत्याचार शोषण, नारी अस्मिता, समानाधिकार ।*

प्रस्तावना :– दुनिया भर में भारतीय संस्कृति पूजनीय है। यहां स्त्री को देवी के रूप में पूजा जाता है; लेकिन हम कुछ समय पीछे जाकर देखें तो यहां स्त्रियों को अपने स्तन ढकने के लिए भी कर देना पड़ता था। यदि नांगेली जैसी स्त्री न होती तो यहां आज भी हमें स्तन कर से मुक्ति नहीं मिलती। भारत में पतियों की मृत्यु के बाद स्त्री को जीवित रहने का अधिकार नहीं था। उन्हें पति की चिता के साथ ही जिंदा जला दिया जाता था। औरत मात्र विलासिता की वस्तु बन कर रह गई थी। राजनीति एवं ईश्वर के नाम पर स्त्री को ठगा गया। यदि हम दलित समाज के संदर्भ में स्त्री को देखें तो वहां उनकी स्थिति और ज्यादा दयनीय है। एक तो स्त्री दूसरा दलित। इस दोहरे अभिशाप के साथ स्त्री का जीवन दुर्भर हो गया था। ब्राह्मणवादी कुंठित विचारकों ने दलित महिला को जब चाहा अपनी हवस का शिकार बनाया। असंगघोष जी ने अपनी रचना 'मिथकों को नकारता हूं' में सीधे–सीधे मनुवादी विचारकों ललकारा है। वह कहते हैं कि यदि ईश्वर है तो वह दलितों की सहायता के लिए क्यों नहीं आता? उनके काव्य में ऐसे कई वैज्ञानिक एवं वैचारिक तथ्य हमें देखने को मिलते हैं।

"सरेआम
निर्वस्त्र कर
जिसे तूने
पूरे गांव में घुमाया
उस अबला का
चीर बढ़ाने
कृष्णा क्यों नहीं आया?
मेरा एक यही सवाल

The Journal of Scientific Discourse
International, Multi-Disciplinary Peer-Reviewed Quarterly Research Journal
https://gaveshana.org/the-journal-of-scientific-discourse/
Vol-2, Issue-1
Jan-Mar 2025
ISSN: 3049-0081 (Print)

हिंदी – भाषा अथवा शैली

मीनाक्षी व्यास
हिंदी विभाग, मुक्त शिक्षा विद्यालय/परिसर, दिल्ली विश्वविद्यालय, 110021, दिल्ली, भारत
Email: minakshiv2023@gmail.com

आज लगभग सभी भाषा समुदायों में अनेक भाषिकता हर स्तर पर देखी जा सकती है। हर समुदाय में मातृभाषा के अतिरिक्त भाषायें तथा बोलियां भी प्रयुक्त होती हैं। लेकिन इन अनेक भाषा रूपों में भाषा की मानकता की स्थिति होना अत्यंत कठिन है। भारत जैसे अनेक भाषी देश में विभिन्न प्रयोजनों के लिये कोई भी विभिन्न शैलियों और भाषाओं को प्रयुक्त कर सकता है, चाहे इन भाषाओं के व्याकरण तथा लेखन नियमों की जानकारी उसे ना हो तो भी अपने प्रयोजन के लिये सिर्फ संप्रेषण के उद्देश्य से कोई भी एकाधिक बोलियों तथा भाषाओं को प्रयुक्त कर सकता है। भारत में हिंदी को प्रमुख भाषा तथा राष्ट्रभाषा माना जाता है। अतः कई हिंदीतर प्रयोक्ता अपनी बोलियों के साथ–साथ हिंदी को भी अनौपचारिक तथा औपचारिक स्तर पर प्रयुक्त करते हैं। किसी भाषा में वो बोलियां भी शामिल होती हैं, जिनका प्रयोग व्यवहार में करते हैं। डॉ. श्रीवास्तव के अनुसार– ''बोली, भाषा का क्षेत्रीय प्रभेदक शैली रूप है, जिसे एक निश्चित व्याकरणिक रूप द्वारा पहचाना जाता है।''....."स्थानीय शैली की हिंदी में हम कई उदाहरण देख सकते हैं। एक क्षेत्र में हम ऐ, ओ ध्वनियों को इसी रूप में बोलते हैं तो दूसरे में अई, अउ (और–अउर) के रूप में बोलते हैं।" उनके अनुसार "भाषा एक प्रकार की बोली है।..... भाषा व्यवहार का शीर्ष मान्य बोली है जिसे भाषा तथा बोली के भेद के संदर्भ में भाषा का पर्याय कहा जा सकता है।" लेकिन इन स्थापनाओं से परे अगर मान्य भाषा रूपों को देखें तो मानक भाषा तथा अमानक स्थानीय प्रभेदक शैली रूप अथवा शैली भेद अर्थात् बोली में अंतर–व्याकरणिक मानकता तथा परिनिष्ठितता के स्तर पर होता है।

भाषा किसी राष्ट्र अथवा राज्य की प्रतिनिधि तथा आदर्श भाषा होती है, जिसका प्रयोग वहां के शिक्षित समुदाय द्वारा प्रशासनिक, व्यापारिक, वैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक सभी औपचारिक कार्यों में किया जाता है। यही भाषा रूप अंतर्राष्ट्रीय संदर्भों में व्यवहार में लाया जाता है। देश में अनेक जातियां हैं, उसी प्रकार अनेक भाषायें भी हैं। अधिकतर भारतीय भाषायें संस्कृत से निर्मित बोलियों के परिष्कृत रूप हैं। संस्कृत से उद्भूत भाषायें भारतीय भाषायें मानी जाती हैं। भारत अनेक भाषी देश है। साधारणतः सभी भाषायें राष्ट्रभाषा कही जा सकती हैं। संविधान ने केन्द्र तथा राज्यों की पृथक भाषाओं को कार्यलयी भाषाओं के रूप में मान्यता दी है। परंपरा ने उन्हें देश भाषाओं का नाम दिया है। आधुनिक काल में उन्हें 'प्रदेश भाषा' का नाम दिया गया है। इनमें से स्वतंत्र राज्य के केन्द्र स्तर पर हिंदी को देश की राष्ट्रभाषा माना जाता है। हिंदी खड़ी बोली का वह परिष्कृत भाषा रूप है जो उच्चारण तथा लेखन में आदर्श माना जाता है।

The Journal of Scientific Discourse
International, Multi-Disciplinary Peer-Reviewed Quarterly Research Journal
https://gaveshana.org/the-journal-of-scientific-discourse/
Vol-2, Issue-1
Jan-Mar 2025
ISSN: 3049-0081 (Print)

मुंशी प्रेमचंद कें उपन्यासों में वर्णित किसानों की समस्याएं

निवेदिता पाराशर[1*] & सोनिया यादव[1]

1. कला विभाग, मंगलायातन यूनिवर्सिटी, अलीगढ़–202146, उत्तर प्रदेश, भारत

[*]Corresponding Author: niveditaparashar60@gmail.com

शोध सार :– *प्रेमचंद जी ने अपने उपन्यासों में किसानों के जीवन में घट रही समस्याओं का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है। उन्होंने अपने उपन्यासों जैसे–गोदान, प्रेमाश्रम, कायाकल्प और कर्म भूमि में किसानों के जीवन में घटने वाली समस्याओं का बहुत ही बारीकी से वर्णन किया है। उन्होंने किसानों का आर्थिक और सामाजिक समस्याओं का वर्णन किया है किसानों का शोषण किस प्रकार से किया जाता है और उस शोषण से किसान किस प्रकार से अपने जीवन के अंत तक लड़ता रहता है उसका सजीव वर्णन अपने उपन्यासों में किया है। साथ ही साथ उन्होंने किसानों को शोषण के खिलाफ लड़ने के लिए भी प्रेरित किया है। प्रेमचंद जी के समय में हमारा देश अंग्रेजों का गुलाम था उस समय के किसानों को दोहरे शोषण का शिकार होना पड़ता था, एक तो अंग्रेजों का शोषण और दूसरा जमीदारों का। 21वीं सदी में भी किसानों की स्थिति में ज्यादा अंतर नहीं आया है। आज भी किसान ऋण से ग्रस्त होकर आत्महत्या कर रहे हैं और अपने हक के लिए सड़कों पर उतर कर आंदोलन कर रहे हैं। जो हमारे देश के अन्नदाता हैं उन्हें ही भूखे पेट सोना पड़ रहा है।*

मुख्य शब्द :– *ऋण, आर्थिक समस्याएँ, जनसंख्या वृद्धि, गरीबी, शिक्षा की कमी, प्राकृतिक आपदाएँ भूख, पलायन।*

प्रस्तावना :– प्रेमचंद जी के मन में आरंभ से ही किसानों के प्रति बहुत ही अधिक सहानुभूति और जिज्ञासा का भाव था। प्रेमचंद जी ने अपने उपन्यासो में किसानों को होने वाली समस्याओं का यथार्थ वर्णन अपने प्रसिद्ध उपन्यासों गोदान, प्रेमाश्रम, कायाकल्प और कर्मभूमि में किया है। प्रेमचंद जी ने अपने उपन्यासों में किसानो को महाजन, जमींदार और नौकरशाही से कहीं ना कहीं संघर्ष करते हुए दिखाया है लेकिन किसान इन विकट परिस्थितियों का डटकर सामना करता है प्रेमचंद जी के उपन्यासों में किसानों की गहरी और प्रमाणिक जानकारी प्राप्त होती है। प्रेमचंद जी का मानना था कि किसानों की समस्याओं का सबसे बड़ा कारण आर्थिक समस्या है। जब तक आर्थिक समस्याओं से किसान मुक्ति नहीं पा लेता तब तक पूर्ण स्वाधीनता को प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

भारतीय किसानों की समस्याओं को सबसे पहले प्रेमचंद जी ने ही साहित्यिक अभिव्यक्ति देने का प्रथम प्रयास किया। प्रेमचंद जी ने अपने पहले हिंदी उपन्यास 'प्रेमाश्रम' में किसानों की समस्याओं और संघर्षों का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है। प्रेमचंद जी ने लगभग 100 साल से अधिक जिन समस्याओं का

The Journal of Scientific Discourse
International, Multi-Disciplinary Peer-Reviewed Quarterly Research Journal
https://gaveshana.org/the-journal-of-scientific-discourse/
Vol-2, Issue-1
Jan-Mar 2025
ISSN: 3049-0081 (Print)

अस्तित्ववाद में मानव स्वतंत्रता की अवधारणा

आनंद दांगी
गवेषणा शोध संस्थान, गवेषणा, सागर–470002, मध्यप्रदेश, भारत
Email: anand.gaveshana@gmail.com

शोध सारांश:– *अस्तित्ववाद एक मौलिक दार्शनिक परिप्रेक्ष्य है, जिसके केंद्र में स्वतंत्रता और जिम्मेदारी है। कीर्केगार्ड को इस विचार का जनक माना जाता है, लेकिन सार्त्र की मदद से इसे प्रमुखता मिली। अस्तित्ववादी नास्तिक दार्शनिक सार्त्र ने अपने दर्शन में मानवीय स्वतंत्रता, नैतिकता और निर्णयों के प्रभाव पर विशेष जोर दिया। यह शोध पत्र मानव स्वतंत्रता और अस्तित्ववाद के दर्शन पर केंद्रित है, विशेष रूप से जीन पॉल सार्त्र के दृष्टिकोण के संदर्भ में। सार्त्र के अनुसार, मानव का अस्तित्व स्वच्छंदता, जिम्मेदारी और आत्मनिर्भरता से जुड़ा होता है। उनका मानना है कि मानव का अस्तित्व पूरी तरह से स्वतंत्र है, और यह स्वतंत्रता उसे अपने कार्यों, निर्णयों और जीवन के मार्ग का चयन करने का अधिकार देती है। हालांकि, सार्त्र के अनुसार, यह स्वतंत्रता एक भारी जिम्मेदारी के रूप में आती है, क्योंकि हर व्यक्ति अपने कर्मों का जिम्मेदार होता है और उसे अपने चुनावों के परिणामों का सामना करना पड़ता है। सार्त्र के अस्तित्ववाद में, मनुष्य को अपने अस्तित्व को स्वयं परिभाषित करने की स्वतंत्रता प्राप्त होती है, लेकिन इस स्वतंत्रता के साथ एक गहरी चिंता और भय भी जुड़ा होता है। इसके विपरीत, यास्पर्स जैसे अस्तित्ववादी दार्शनिक मानव स्वतंत्रता के अन्य पहलुओं पर ध्यान केंद्रित करते हैं।*

बीज शब्द:– *मानव स्वतंत्रता, संकल्प–स्वातंत्र्य, अस्तित्ववाद, नास्तित्कता, उत्तरदायित्व और नैतिकता।*

मानव एक विवेकशील प्राणी है। जो अपनी बौद्धिक क्षमता से अपने निर्णयों व अपने निश्चयों को निर्धारित कर सकता है। स्वतंत्रता मानव जीवन का मूल अंग है। यदि मानव अपने कर्तव्यों, उत्तरदायित्व और निर्णय को लेने एवं अपने अनुसार जीवन जीने के लिए स्वतंत्र नहीं, वह केवल एक पालतू जानवर के समान है। मानव एक आत्म–चेतन प्राणी होने से उसके आंतरिक स्वतंत्रता का प्रश्न उठाया जा सकता है । यहाँ आंतरिक स्वतंत्रता से यह तात्पर्य है कि जिसमें किसी बाह्य अन्य व्यक्ति विशेष का हस्तक्षेप न हो।

स्वतंत्रता दर्शन जगत में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। अपने विचारों की स्वतंत्रता दर्शन में अधिक प्रभावकारी होती है। दर्शनशास्त्र में स्वतंत्रता–सामाजिक, पारिवारिक, नैतिक तथा अस्तित्व संबंधी अवधारणा है। अस्तित्ववाद में स्वतंत्रता को मुख्य केन्द्रित दृष्टिकोण मान्यता प्राप्त है जिसमें जीन पॉल सार्त्र ने महत्वपूर्ण कार्य किया है । उन्होंने मानव के अस्तित्व के सन्दर्भ को अपने दर्शन का मुख्य उद्देश्य बनाया । जीन पॉल सार्त्र ने स्वतंत्रता, उत्तरदायित्व और मानव के अस्तित्व को लेकर उन्होंने अपने दर्शन की नींव रखी। साथ ही सार्त्र ने मानव स्वतंत्रता पर कई तर्क प्रस्तुत किये। उन्होंने मानव को एक स्वतंत्र रूप

The Journal of Scientific Discourse
International, Multi-Disciplinary Peer-Reviewed Quarterly Research Journal
https://gaveshana.org/the-journal-of-scientific-discourse/
Vol-2, Issue-1
Jan-Mar 2025
ISSN: 3049-0081 (Print)

ग्रामीण प्रवासी छात्रों की सांस्कृतिक समस्याओं का अध्ययन (सागर शहर के संदर्भ में)

दीप्ती पटेल[1] & सुनील साहू[2*]

1. शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय सागर (म.प्र.)

2. अर्थशास्त्र विभाग, शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

***Corresponding Author: sunilsahusgr@gmail.com**

शोध सारांश: ग्रामीण प्रवासी छात्रों को शहरी शैक्षणिक संस्थानो/केंद्रों मे स्थानांतरण के दौरान कई जटिल सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। शोधपत्र का मुख्य उद्देश्य उन सांस्कृतिक समस्याओं का अध्ययन करना है जिनका सामना ग्रामीण प्रवासी छात्र, उच्च शिक्षा प्राप्त करने के दौरान शहरी परिवेश तथा संस्थानों में करते हैं। इस शोधपत्र में सांस्कृतिक समस्याओं का मुख्य रुप से विश्लेषण किया गया है। शोध करने के पश्चात मुख्य रूप से भाषा, खानपान, रहन–सहन, जैसी आदतों में अंतर तथा सामाजिक रीति–रिवाजों, परंपराओं एवं सांस्कृतिक अंतर के कारण समायोजन जैसी समस्याएं उभरकर सामने आयी हैं। शोध से स्पष्ट होता है कि इन चुनौतियों का प्रभाव न केवल छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य पर बल्कि उनके सामाजिक समायोजन पर भी नकारात्मक प्रभाव डालता है। इस अध्ययन में मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोनों पद्धतियों का उपयोग किया गया है, साथ ही प्राथमिक आंकड़ों पर अधिक बल दिया गया है। जिसमें 51 ग्रामीण प्रवासी छात्रों का साक्षात्कार अनुसूची और प्रश्नावली के माध्यम से आंकड़ों को एकत्रित किया गया है। ग्रामीण प्रवासी छात्र अक्सर अपनी ग्रामीण पहचान के कारण बहुसंख्यक शहरी छात्रों से खुद को अलग महसूस करते हैं। यह पहचान का संघर्ष उनके सामाजिक संबंधों और शैक्षणिक अनुभवों में असमानता पैदा कर सकता है। इस संदर्भ में, ग्रामीण प्रवासी छात्रों को उनकी पहचान और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के कारण बहिष्कृत या उपेक्षित महसूस किया जाता है तथा इससे उनके मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। ग्रामीण प्रवासी छात्रों के अनुभव और शहरी शैक्षणिक संस्थानों में प्रचलित प्रतीकात्मक संस्कृति के बीच का अंतर उनके अकादमिक संघर्ष को बढ़ा देता है। संस्कृति के तथाकथित ठेकेदार भी अपनी अपनी संस्कृतियों पर गर्व करने की मानसिकता के कारण समस्याओं को और जटिल बना देते है। इन समस्याओं को समझने और उनके समाधान के लिए शैक्षणिक संस्थानों, समाज तथा सरकार को मिलकर प्रयास करने की आवश्यकता है। इसके लिए वैज्ञानिक और तार्किक दृष्टि से विचार करते हुए जीवन जीने के नए आयामों को विकसित किया जाए। इसके साथ–साथ जागरूकता की भी महत्वपूर्ण भूमिका हैं। उनके मानसिक संघर्ष को कम करने हेतु समान अवसर प्रदान किए जाने चाहिए।

मुख्य शब्द: ग्रामीण प्रवासी छात्र, सांस्कृतिक असमानता, मानसिक स्वास्थ्य, शैक्षिक समावेशन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, तार्किकता, सामाजिक जागरूकता।

The Journal of Scientific Discourse
International, Multi-Disciplinary Peer-Reviewed Quarterly Research Journal
https://gaveshana.org/the-journal-of-scientific-discourse/

Vol-2, Issue-1
Jan-Mar 2025
ISSN: 3049-0081 (Print)

प्रभा खेतान का उपन्यास 'पीली आँधी' और 'प्रवासी मारवाड़ी'

दीपन कुमारी[1*] & पिंकी पारीक[1]

1. वनस्थली विधापीठ टोंक, राजस्थान–304022, भारत

[*]Corresponding author: deepankumari0497@gmail.com

शोध सारांशः *– आज दुनिया भर के लोगों में राजस्थान की सतरंगी संस्कृति, शोर्य एवं वीरता, बहुरंगीआभा तथा स्थापत्य–शिल्प, खान–पान, पहनावा एवं लोकगीतों का ऐसा सम्मोहन है कि उसके आकर्षण में लोग बन्ध जाते हैं। सुदूर क्षेत्रों में मारवाड़ियों ने अपनी इन्ही विशेषताओं के कारण अपनी एक विशेष पहचान बनायी है।*

'पीली आंधी' उपन्यास में प्रभा खेतान ने मारवाड़ियों के संघर्ष और उनके समृद्व होने का चित्रण किया है। इस उपन्यास के माध्यम से प्रभा खेतान ने एक मारवाड़ी युवक के संघर्ष से लेकर उसके कुशल व्यापारी बनने तक के सफर को रूपायित किया है। राजस्थान से पलायन करने के बाद भी यह मारवाड़ी लोग अपनी संस्कृति को नहीं भूलते। प्रभा खेतान ने प्रवासी मारवाड़ीयों की मूल संस्कृति और वर्तामान समस्याओं के साथ उनकी व्यापारिक तरक्की को प्रस्तुत किया है। मारवाड़ी समाज के दर्द, उनके अपनी जमीन से कट जाने का दु:ख, जी–तोड़ परिश्रम आदि का अत्यन्त प्रमाणिक चित्रण किया है।

अपनी कुशल व्यापारिकता के कारण देश में एक अलग पहचान इन लोगों ने बनाई है। राष्ट्र की आर्थिक उन्नति में यह समाज सहभागी रहा है। इन्होंने लम्बे समय तक देश के विभिन्न हिस्सों में रहने के बावजूद अपनी विशिष्टता और 'घर' से जुडाव बनाया रखा।

बीज–शब्द *:– परम्पराएँ, स्वाभिमान, जीविकोपार्जन, समृद्धशाली इतिहास, राष्ट्र की अर्थव्यवस्था, कुशल व्यापार, समस्याएँ।*

एक प्रवासी वह व्यक्ति होता है, जो अपने मूल देश के बाहर रहता है। प्रवासी मारवाड़ी से तात्पर्य राजस्थान के वे व्यक्ति जो दूसरे राज्य में जाकर रहते है। इतिहास बताता है कि राजस्थान में आए दिन अकाल और पानी की कमी रहते यहाँ के लोग खेती नहीं कर पा रहे थे। कृषि प्रधान इस राज्य में पानी की कमी के कारण लोग अपनी जीविकोपार्जन के लिए देश के अन्य राज्यों में जाकर अपना छोटा–मोटा कार्य कर पेट भरते थे।

मध्यकाल से लेकर आज तक यह सिलसिला बना हुआ है। यह लोग देश के अलग–अलग राज्य बंगाल, महाराष्ट्र, कर्नाटक, चेन्नई, आन्ध्रप्रदेश आदि राज्यों में जाकर अपना व्यापार करते हैं। वैसे तो मारवाड़ी लोग राजस्थान के पश्चिम क्षेत्र में रहने वाले जोधपुर–मारवाड़ के लोगों को मारवाड़ी कहा जाता है लेकिन राजस्थान राज्य से बाहर जाने वाले हर व्यक्ति को मारवाड़ी ही कहा जाता है इसके सम्बन्ध में भीमसेन केड़िया का कथन है कि – ''अपनी विशेष वेशभूषा और बोली के दायरे के अन्दर आया हुआ हर एक आदमी, चाहे वह जिस प्रांत का निवासी हो, मारवाड़ी कहा जाता है और चूंकि दुनियाँ के प्रत्येक भाग में अपनी व्यापार कुशलता के कारण मारवाड़ी पाये जाते है।''[1]

अपनी वेशभूषा और रहन–सहन के कारण मारवाड़ी लोग देश में अपनी अलग पहचान रखते है। इसी सम्बन्ध में बालचन्द्र मोदी का कथन है कि – ''मारवाड़ का जातीय चिन्ह प्रधानतः 'पगड़ी' है। नतीजा यह हुआ कि आगे चलकर जितने भी पगड़ीधारी राजस्थानी बंगाल में आये, चाहे वे

The Journal of Scientific Discourse
International, Multi-Disciplinary Peer-Reviewed Quarterly Research Journal
https://gaveshana.org/the-journal-of-scientific-discourse/

Vol-2, Issue-1
Jan-Mar 2025
ISSN: 3049-0081 (Print)

भारतीय नाट्य परंपरा और संगीत

शुभम कुमार सेन

हिन्दी विभाग, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक–484887, म.प्र., भारत

Email: shubhamsen616@gmail.com

शोध सारांश *– वैदिक काल से ही नाट्य और संगीत का संगम चला आ रहा है। नाट्य परंपरा एक प्रदर्शनकारी कला रूप की परंपरा है जिसमें कलाकार अपने रंगों को बदलता हुआ नजर आता है। नाटक सिर्फ कलाओं का ही रूप नहीं है बल्कि उसमें राग और संगीत का सम्मिश्रण भी देखने को मिलता है। वह एक स्वतंत्र कला रूप न होकर अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए कलाओं, संगीत अथवा संघटकों पर निर्भर रहने वाली प्रक्रिया है। नाट्य और संगीत दोनों ही परस्पर सहयोग की भूमिका अदा करने वाले घटक है जो एक दूसरे को आगे बढ़ने में सहयोग प्रदान करते है। न तो नाटक अपने आप को परिपूर्ण बना सकता है संगीत के बिना और न ही संगीत अपने को प्रदर्शित कर सकती है नाट्य के बिना। संगीत भी भाव भंगिमाओं से घिरी हुई एक कला है जो नाट्य के माध्यम से सुगमता पूर्वक प्रकट की जा सकती है। इस शोध पत्र में इन्हीं संदर्भों को देखते हुए नाट्य और संगीत के मध्य के सबंधों को प्रकट किया जाएगा। जिसमें नाट्क कला और संगीत कला के स्वरूपों पर चर्चा की जाएगी। साथ ही नाटक और संगीत के मध्य के संबंध को देखा जाएगा। यह शोध पत्र नाट्य और संगीत के मध्य एक नई समझ विकसित करेगा जो एक नया दृष्टिकोण भी लाएगा।*

बीज शब्द *– नाटक, संगीत, भारतीय नाट्य, परंपरा, अंतर्संबंध।*

नाटक साहित्य की अन्य विधाओं में से एक विशिष्ट विधा है। नाटक में रंगकर्मी ही ऐसा व्यक्तित्व होता है जो नाटककार और दर्शकों के मध्य सेतु का कार्य करता है। रंगकर्मी ही सम्पूर्ण नाटक को दर्शकों से जोड़ता है उनके मध्य साधारणीकरण स्थापित करता है। नाटक शब्द की व्युत्पत्ति ही नट् धातु से हुई है। भारतीय नाट्य शास्त्र में शुरूआत में ही एक कथा का प्रारंभ होता है जिसमें बताया गया है कि भरतमुनि जब शांत भाव से बैठे हुए थे तब आत्रेय प्रभृति मुनियों ने उनसे नाट्य वेद को लेकर कुछ प्रश्न किए जैसे – किसके लिए बनाया गया, कौन खेलता है, किस तरह प्रयोग किया जाता है। भरतमुनि तब बतलाते है कि "वैवस्वत मनु के समय त्रेता युग प्राप्त हुआ और काम तथा लोभवश लोग ग्राम्य धर्म की ओर प्रवृत्त हो गए तथा ईर्ष्या और क्रोध से मूढ़ होकर वे अनेक प्रकार के सुख दुःखो के शिकार होने लगे। लोकपालों द्वारा प्रतिष्ठित जम्बूद्वीप जब देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और नागों से समाक्रान्त हो गया, तब इन्द्र प्रभृति देवताओं ने ब्रह्मा से जोकर कहा कि "हे पितामह, हम ऐसा कोई क्रीडनीयक या खेल चाहते है जो दृश्य भी हो और श्रव्य भी हो; जो वेद–व्यवहार है वह शूद्र जाति को सिखाया नहीं जा सकता, अतएव आप सब वर्णों के योग्य किसी पाँचवें वेद की सृष्टि कीजिए।"[1] इस प्रकार ऋग्वेद से पाठ्य अंश, सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रसों को लेकर पंचम वेद के रूप में नाट्य शास्त्र की रचना हुई।

नाटककार और नाटक को देखने वाले दर्शकों में सहृदय का सामंजस्य जो स्थापित करता है वह अभिनेता ही होता है। इसलिए सबसे पहले नाट्यशास्त्र अभिनेताओं को दृष्टि में रख कर लिखा गया है। नाट्यशास्त्र में जो करण, अंगहार, चारी आदि की विधियाँ और नृत्य, गीत और वेश–भूषा का जो विस्तारपूर्वक विवेचन मिलता है वह भी अभिनेताओं की दृष्टि को ध्यान में रखकर लिखा गया है। "रंगमंच का विधान अभिनेताओं को ध्यान में रखकर किया गया है।"[2]

The Journal of Scientific Discourse
International, Multi-Disciplinary Peer-Reviewed Quarterly Research Journal
https://gaveshana.org/the-journal-of-scientific-discourse/

Vol-2, Issue-1
Jan-Mar 2025
ISSN: 3049-0081 (Print)

A Study of Cost Control Mechanisms and Their Impact on Organizational Efficiency

Udit Malaiya

Dept. of Commerce, Rani Awantibai Lodhi State University, Sagar-470001, M.P., India

Email: malaiyaudit@gmail.com

Abstract: - *Cost control mechanisms are pivotal for organizations aiming to optimize resources and enhance overall efficiency. This research paper examines various cost control methods, their implementation, and their influence on organizational performance. Through a systematic review of literature and case studies, the study explores the relationship between cost control practices and operational efficiency across diverse industries. The findings reveal that strategic cost control not only curbs unnecessary expenditures but also fosters innovation, improves decision-making, and strengthens competitive advantage.*

Keywords*: Control, Cost, Mechanisms, Organizational, Efficiency etc.*

Introduction: Cost control is a vital component of organizational management, especially in an era of increasing globalization and competition. Effective cost control mechanisms enable organizations to optimize resources, reduce waste, and ensure financial stability. Scholars and practitioners have emphasized that cost control is not merely about cutting expenses but involves strategic allocation of resources to achieve efficiency (Kaplan & Norton, 1996). Organizations that successfully implement cost control measures can enhance their operational efficiency, leading to sustainable growth and profitability (Drury, 2012).

Efficiency is often a product of disciplined financial oversight coupled with innovative strategies for resource utilization. In modern enterprises, cost control mechanisms such as budgeting, variance analysis, and strategic cost management have emerged as essential tools. These mechanisms, when integrated with organizational goals, help identify inefficiencies, set financial priorities, and achieve desired outcomes (Porter, 1985).

In the current trade framework, regulating costs efficiently is a foundation of organizational success. Enterprises encounter an array of difficulties, including varying market settings, technical progressions, and mounting rivalry. To stay viable and lucrative, organizations must establish harmony between cost oversight and functional productivity. Cost regulation mechanisms—organized practices created to govern, oversee, and lower expenditures—are essential to accomplishing

The Journal of Scientific Discourse
International, Multi-Disciplinary Peer-Reviewed Quarterly Research Journal
https://gaveshana.org/the-journal-of-scientific-discourse/

Vol-2, Issue-1
Jan-Mar 2025
ISSN: 3049-0081 (Print)

Current Trends in Library and Information Science Research in Central Universities in India (2019-2023)

Pushpendra Dangi[1*]& Jitendra Kumar Gupta[1]

1. Dept. of Library and Information Science, D.H.S.G.V.V., Sagar-470003 M.P., India

[*]Corresponding Author: trajpootjsk@gmail.com

Abstract: - *The paper aims to explore the research trends in Library and Information Science (LIS) based on thesis submitted to 15 Central Universities of India by LIS departments. For this study thesis were accessed through Shodhganga: a reservoir of Indian theses. In this article total of 159 theses were reviewed. The study has identified twenty-seven subtopic of research areas in Library and information science research. The study shows that the various subject field in order to ICT, User study, collection development of library management, information literacy, Scientometric/Bibliometric Study.The present study reveals the trend study helps to know the growth of the research productivity in Library and Information Science during the period of 2019-2023 on the basis of Sodhganga.*

Keywords: *Research trends, Library and Information Science Research, Research productivity.*

Introduction: Research is a means of continuously developing a discipline. It endows a discipline with the ability to utilize the knowledge generated in other disciplines. It makes use of scientific methods. In other words, research means systematic investigations to establish facts and reach new conclusions. In the context of library and information science research as the collection and analysis of original data on a problem of librarianship according to scientific and scholarly standards.

A research trend is read scientific publications on this topic, refer to them, and publish the results of their own research trend refers to the general direction in which a specific field of study is moving. Research trends in Library and Information Science (LIS) are an ever current and interesting topic for the LIS research community and practitioners. In general terms, research can be defined as the information seeking of individuals and groups, including the factors that generate this activity, as well as various arrangements and conditions that support the information seeking and the provision of access to information. Research is necessary to create new knowledge and contribute to the growth of LIS as a profession and discipline. LIS research contributes to the understanding of the information society and its development, enables professionals to relate more

The Journal of Scientific Discourse
International, Multi-Disciplinary Peer-Reviewed Quarterly Research Journal
https://gaveshana.org/the-journal-of-scientific-discourse/

Vol-2, Issue-1
Jan-Mar 2025
ISSN: 3049-0081 (Print)

An Introduction Cloud Computing and E- Library Services

Jitendra Kumar Gupta[1*], Puspendra Singh Dangi[2], Deepika Vishwakarma[3]

1. Council of Scientific and Industrial Research-CDRI, Lucknow- 226031, U.P., India
2. Armament Research & Development Establishment, DRDO, Pune-411021, M.H., India
3. Dept. of Library and Information Science, D.H.G.V.V., Sagar-470003, M.P., India

[*]Corresponding Author: gkjitendra95@gmail.com

Abstract: *The introduction of cloud computing to digital library services of library will become more with user-centric, more professional and more effective etc. and we all believe that digital library will create more knowledge benefits for our country with the help of Cloud computing. In Cloud computing the information /documents/ data can be access widely and universally from remote location and virtual library is synchronized in the laptop/tablets/ and mobile like devices with users' convenience. The, cloud computing as a new concept are being added to ease the practice in the library and accepting new technology for information handling and retrieval as per the need of users/client. Cloud computing has revolutionized the way information is stored, processed, and accessed, offering scalable, cost-effective, and flexible solutions across various domains, including library services. This paper introduces the fundamental concepts of cloud computing and its application in e-library services, highlighting the benefits, challenges, and future prospects. Cloud-based e-libraries provide seamless access to digital resources, enhance collaboration, and improve data management for users and librarians alike. Key technologies such as Infrastructure as a Service (IaaS), Platform as a Service (PaaS), and Software as a Service (SaaS) play a crucial role in optimizing library operations. Despite security and privacy concerns, cloud computing presents a promising future for digital libraries, enabling improved accessibility, efficiency, and innovation in information dissemination.*

Keywords: *Cloud computing, E-Library Services, Digital Libraries, ICT.*

Introduction: Library is a repository of knowledge and institute / organization those have sizable collection of volumes get respect in the community. By the time Nalanda University Library in India is the example for their prestigious very vast collections. With the exponential growth of knowledge and remarkable entry of information communication technology Twentieth century modern Library comes in the existence. Keeping in view the problems in traditional library like investment in infrastructure development and stacking, Preservation, managing and

The Journal of Scientific Discourse
International, Multi-Disciplinary Peer-Reviewed Quarterly Research Journal
https://gaveshana.org/the-journal-of-scientific-discourse/

Vol-2, Issue-1
Jan-Mar 2025
ISSN: 3049-0081 (Print)

Diversity and Distribution of Arbuscular Mycorrhizal Fungal Association in some Medicinal Plants of Satpura Region of MP

Mahendra Kumar Mishra[1*]& Archana Mishra[2]

1. Dept. of Botany, Govt. Autonomous Girls PG College of Excellence, Sagar-470002 M.P., India
2. Dept. of Botany, Jaywanti Haksar Govt. PG College, Betul-460001, M.P., India

[*]Corresponding Author: mishradrmk@gmail.com

Abstract: *In the present study we have determined diversity and distribution of arbuscular mycorrhizal fungi (AMF) associated with different medicinal plants naturally growing in Kukru hills of Satpura ranges of Betul district. In the present investigation seventeen medicinal plants belonging to nine families were surveyed for their mycorrhizal association. The result revealed that Catharanthus roseus of Apocyanaceae family showed greater percent root colonization as well as average AMF spore population. Thirty-one AMF species belonging to five genera were isolated during investigation. Glomus species were found dominating followed by Acaulospora species. Acaulospora gerdemanii, Acaulospora scrobiculata, Glomus clarum, Glomus hoi, and Glomus mosseae were found associated with all selected medicinal plants. Result also indicated that C. roseus could be used as natural source of mass cultivation of AM fungi.*

Key Words: *Arbuscule, Medicinal plants, Mycorrhiza, Occurrence, Percent root colonization, Spore count, Vesicle.*

Introduction

Mycorrhiza from the Greek terms myco (= fungus) and rhiza (= root), is the predominant root symbiosis. Majority of land plants species form symbiosis with soil borne fungi. In nature arbuscular mycorrhiza (AM) are the oldest and most widespread symbiosis. Recent fossil studies and molecular data have tracked the presence of this symbiosis all the way to the Ordovician era *i.e.,* to be at least 60 million years old (Redecker *et al.,* 2000). Arbuscular mycorrhizal (AM) fungal symbioses are of great ecological importance. The ubiquitous AM fungi belonging to the phylum Glomeromycota (Terdosoo *et al.* 2018) colonize almost 72% of the plant species growing in the natural ecosystem (Brundrett & Tedersoo 2018).

The AM symbiosis aids in plant growth by increasing the availability as well as translocation of various nutrients especially phosphorous (P) (Rouphael *et al.* 2015). The main advantage of mycorrhiza is its greater soil exploration and increasing uptake of mineral elements like P, N, K, Zn, Cu, S, Fe, Mg, Ca and Mn

The Journal of Scientific Discourse
International, Multi-Disciplinary Peer-Reviewed Quarterly Research Journal
https://gaveshana.org/the-journal-of-scientific-discourse/
Vol-2, Issue-1
Jan-Mar 2025
ISSN: 3049-0081 (Print)

Bibliometric Study of DESIDOC Journal of Library & Information Technology (2020-2023)

Vishal Singh Lodhi[1*], Ramsingh Chauhan[2], Priya Barman[3] & Vipin Kumar Chouhan[2]

1. Department of LIS, Gyanveer University Sagar-470115 M.P., India
2. National Institute of Technology Agartala, Agartala-799046 Tripura, India
3. Department of LIS Banaras Hindu University, Varanasi-221005, U.P., India

[*]Corresponding Author: Vishalsinghlodhi2000@gmail.com

Abstract: - *This report presents a bibliometric analysis of the journal "DESIDOC Journal of Library & Information Technology" for the 2020–2023 period. The number of articles, authorship trends, article distribution by year, article distribution by subject, and the average number of references in each article are the main topics of the analysis. Every study identifies the journal's strengths and weaknesses, which will aid in its future growth. According to the results out of 181 papers, 150 (82.87%) were submitted by a joint author, while the remaining 31 (17.12%) were contributed by single author. This study, 83.63% of the contributions come from India, with the remaining 16.36% coming solely from outside sources. The analysis explores collaboration patterns among authors and institutions, as well as the journal's influence within the global library and information science community. The findings offer insights into the evolution of library science research, highlighting shifts in focus and providing guidance for future researchers and practitioners in the field.*

Introduction: The current study offers a quantitative analysis of the advancements in Library and Information Science (LIS) as they are represented in the literature from 2020 to 2023, which is published by DESODOC as articles in the DESIDOC Journal of Library & Information Technology. It seeks to determine many journal characteristics, including the distribution of articles by year, by core area, by geography, the authorship pattern, the length of the articles, and the references. This chapter focusses on the conclusions drawn based on the findings of bibliometric analysis of DESIDOC Journal of Library & Information Technology published during 2020 to 2023.

Objective of the study: The study was conducted with aim of analyzing The DESIDOC Journal of Library & Information Technology from 2020-2023 with following objectives. To study -

- Distribution of article by years.

The Journal of Scientific Discourse
International, Multi-Disciplinary Peer-Reviewed Quarterly Research Journal
https://gaveshana.org/the-journal-of-scientific-discourse/

Vol-2, Issue-1
Jan-Mar 2025
ISSN: 3049-0081 (Print)

Unlocking the Mushroom's Potential for their Biochemicals and Market Values

Smita Mishra[1*], Mahendra Kumar Mishra[2] & Deepak Vyas[1]

1. Lab of Microbial Technology and Plant Pathology, Dept. of Botany, Dr. Harisingh Gour Vishwavidyalaya, Sagar-470003 MP, India
2. Dept. of Botany, Govt. Autonomous Girls PG College of Excellence, Sagar-470002 MP, India

[*]Corresponding Author: smitamishra4797@gmail.com

Abstract: - *Mushrooms have an absorptive mode of nutrition and are equipped with varied enzymes to harness the nutrients of the lignocellulosic substrate and metabolise these substrates into an edible source of highly nutritious food. Mushrooms have a unique potential to convert agricultural residue into food, so it is of great importance to harness the nutraceuticals- that will be instrumental in fighting against malnutrition, disease and disorder. Now, it is seen that many countries explore mushrooms for new metabolites as drug molecules. Mushrooms have been known for its medicinal and food value since long. Currently, due to the different biological effects of mushrooms, such as antioxidant, anticancer, anti-obesity and immunomodulatory activities have gained considerable attention. Therefore, stakeholders of mushrooms and mushroom-oriented products have been deeply interested in phytochemicals. The beneficial impact of mushrooms boots its demands in the market, there are several products of mushrooms available in the market. In the present article, we explored the bioprospecting of mushroom bioactive compounds and their market utility.*

Keywords: *Bioprospecting, Mushroom, Bioactive compound, Marketing.*

Introduction: Mushrooms belong to the kingdom of Fungi. Fungi are important decomposers in nature. They are found ubiquitously. Living in cryptic ways or sprouting from dead species [1]. Mushrooms are fleshy saprophytic fungi that grow on damp rotten logs of tree trunks, decomposing organic debris, and damp soil rich in organic compounds. Mushrooms are known for their nutritional and medicinal property which benefits human health. Edible mushrooms that are available in the market like oyster mushroom, Paddy straw Mushroom, Jelly mushroom, Button mushroom and Milky mushroom furthermore wild mushrooms are also being gathered and consumed by indigenous communities from all over the world. Mushrooms being macrofungi have an absorptive mode of nutrition (Heterotrophic) which make conducive condition to metabolize bioactive substances from the substrate on which they grow, this functionability of mushroom to metabolize diverse bioactive substances of the substrate is due to the presence of different enzyme-producing pathways. This ability of the mushroom recently

The Journal of Scientific Discourse
International, Multi-Disciplinary Peer-Reviewed Quarterly Research Journal
https://gaveshana.org/the-journal-of-scientific-discourse/

Vol-2, Issue-1
Jan-Mar 2025
ISSN: 3049-0081 (Print)

Current Status of Geographical Indications (GIs) in Madhya Pradesh, India: Challenges of Infringement and Strategies for Protection

Manish Bardia[1*] & Anupi Samaiya[1]

1. Dept. of Education, Dr. Harisingh Gour Vishwavidyalaya, Sagar-470003 MP, India

[*]Corresponding Author: manoneish25@gmail.com

Abstract: *Geographical Indications (GIs) play a crucial role in protecting products that are uniquely associated with a specific region, ensuring their authenticity and economic value. Madhya Pradesh, known for its rich cultural heritage and traditional craftsmanship, has several products registered under the GI framework, while many others are in the process of obtaining recognition. This research explores the significance of GIs in Madhya Pradesh, providing a comprehensive overview of the 18 registered GI products along with details of three GI logos. Additionally, it highlights 27 products currently under the GI application process. The study also examines key challenges such as GI infringement, counterfeiting, and unauthorized use, which threaten the credibility of GI-certified goods. Furthermore, it discusses legal provisions, enforcement mechanisms, and potential remedies to safeguard these products. Strengthening protection strategies and enhancing awareness among producers and consumers are essential for preserving the integrity of GI-tagged goods in Madhya Pradesh.*

Keywords: *GI Act 1999, Geographical Indications (GI Tags), IPR, Madhya Pradesh handloom & handicraft, WIPO.*

1. **Introduction:** Intellectual Property Rights (IPRs) have played a crucial role in protecting creativity, innovation, and economic assets across civilizations. Among these, Geographical Indications (GIs) safeguard products with unique regional characteristics, ensuring authenticity and benefiting local economies (WIPO,2021). International frameworks like the Paris Convention (1883), Berne Convention (1886), and the TRIPS Agreement (1994) have strengthened GI protection globally (Drahos et al., n.d.). India, with its rich cultural and

The Journal of Scientific Discourse
International, Multi-Disciplinary Peer-Reviewed Quarterly Research Journal
https://gaveshana.org/the-journal-of-scientific-discourse/

Vol-2, Issue-1
Jan-Mar 2025
ISSN: 3049-0081 (Print)

An Analytical Examination of the Implications of Article 342 on the Construction and Representation of Tribal Identity in India

Vishal Tiwari

Department of Political Science and Public Administration, Dr. Harisingh Gour Central University, Sagar-470003, M.P., India

Email: vishal191998@gmail.com

Abstract: *India's tribal communities, marked by their distinct cultural, linguistic, and social identities, form an integral part of the nation's diversity. Article 342 of the Indian Constitution, which facilitates the formal recognition of these communities as "Scheduled Tribes," serves as a significant mechanism for preserving their identity and ensuring their representation within India's socio-political framework. This research paper critically examines the composite impact of Article 342 on tribal identity and representation, analyzing its legal and socio-cultural implications. The provision under Article 342 establishes the legal framework for the identification and recognition of Scheduled Tribes, thereby enabling their inclusion in affirmative action programs intended to redress historical injustices. This paper explores the historical evolution of tribal identity in India, scrutinizes the constitutional safeguards established for their protection, and assesses the substantial impact of Article 342 on tribal communities. Through a rigorous examination of case studies, legal interpretations, and scholarly discourse, this study seeks to provide an in-depth understanding of the role Article 342 plays in shaping and sustaining tribal identity and representation in contemporary India.*

Key words: *Scheduled Tribes (STs), Affirmative Action Policies, Constitutional Provisions, Tribal Identity and Representation, Intra-Community Dynamics.*

Introduction: The tribal communities of India, collectively known as Scheduled Tribes (STs), are among the most marginalized and historically disadvantaged groups in the country. They inhabit various regions, from the remote forests of central India to the hilly terrains of the Northeast, each community possessing distinct cultural practices, languages, and social norms. Despite their rich cultural heritage, these communities have often been subjected to social exclusion, economic deprivation, and political marginalization. The Indian Constitution, adopted in 1950, laid down a framework to address these historical injustices and ensure the protection and advancement of Scheduled Tribes. Article 342 of the Constitution is particularly significant in this context, as it provides the mechanism for identifying and officially recognizing communities as Scheduled Tribes. Article 342 is the cornerstone of tribal identity in contemporary India, influencing not only how these communities are perceived legally and socially but also determining their

The Journal of Scientific Discourse
International, Multi-Disciplinary Peer-Reviewed Quarterly Research Journal
https://gaveshana.org/the-journal-of-scientific-discourse/

Vol-2, Issue-1
Jan-Mar 2025
ISSN: 3049-0081 (Print)

A Study of Acharya Shree Vidyasagar Gurudev's Contribution to Girls' Education in India: An Overview

Mudit Malaiya

Dept. of Education, Dr. Hari Singh Gour Vishwavidyalaya Sagar-470003 M.P.

E-mail: malaiyamudit@gmail.com

Abstract: *Acharya Shree Vidyasagar Gurudev, a revered Jain monk, has emerged as an influential spiritual leader and social reformer in India. He has made significant contributions to the advancement of girls' education in the country. The sole objective of this study is to evaluate Gurudev's contributions to enhancing girls' education. A descriptive research design has been adopted to conduct this study. This study heavily relies on secondary data, which has been collected from specific websites, journals, and other electronic sources. For better presentation of the data, the researcher has reviewed specific electronic sources and speeches highlighting Gurudev's contributions to the development of girls' education across India. Finally, the researcher concluded that Acharya Shree Vidyasagar Ji Gurudev has made significant contributions to the field of girls' education in India. The researcher also emphasized that Gurudev particularly stresses the importance of girls' education for cultivating a compassionate and values-driven society.*

Keywords: *Acharya Shree Vidyasagar Gurudev, Girls' Education, and Jain Philosophy.*

Introduction

Acharya Shree Vidyasagar Gurudev, a highly esteemed Jain monk, has become a significant spiritual figure and social reformer in India, making notable contributions in the fields of education, social ethics, and environmental protection. Born in 1946 in Sadalga, Karnataka, he took on the monastic life under Acharya Shree Gyansagar, dedicating himself to the ascetic practices that are fundamental to Jainism. Renowned for his humility, kindness, and profound philosophical insights, Acharya Vidyasagar is held in high regard not only within the Jain community but also across the wider Indian society (Pathak, 2018).

Central to Acharya Vidyasagar's philosophy is the Jain concept of "ahimsa," or non-violence, which he views as a comprehensive moral framework encompassing non-harm in actions, thoughts, and words (Chopra, 2017). His dedication to non-violence is intricately connected to his belief in education as a tool for fostering ethical awareness and social responsibility. He perceives education as a pathway to self-discovery and community improvement, where reverence for all life forms and accountable social conduct are essential. This focus

The Journal of Scientific Discourse
International, Multi-Disciplinary Peer-Reviewed Quarterly Research Journal
https://gaveshana.org/the-journal-of-scientific-discourse/

Vol-2, Issue-1
Jan-Mar 2025
ISSN: 3049-0081 (Print)

Art Based Pedagogy: Explorations, Experiences and Reflections

Harpreet Kaur Jass

Department of Educational Studies, Jamia Millia Islamia, New Delhi-110025, India

Email: hjass@jmi.ac.in

Abstract: - *Any society survives when its cultural is sustaining and proliferating in its educational institutions. This paper discusses the organization, execution and feedback from workshop on art-based pedagogy conducted for the students of Masters of Education (M.Ed.) programme at Faculty of Education at Jamia Millia Islamia in the year 2019. The idea of art-based pedagogy, theoretically which is rooted in cultural knowledge system of India, is aimed for placement in the teacher Education Programme. If the teachers and teacher educators can create a dialogue and discussion-based approach about Indian arts then it would help place Indian arts in rightful context. The approach to art is wholistic and as conceptually claimed in ancient texts like Natyashastra. The respondents appreciated the approach and most looked at it critical for comprehensive meaning making. Whereas, expertise of resource persons was an asset, the short time is challenge that curtails the implementation of wholistic art with teachers.*

Keywords: *Art-Based Pedagogy, Teacher Education, Indian Arts and Culture, Holistic Learning, Natyashastra in Education.*

Art, Experts and Teaching Approach: The recent Indian policies of education (New Education Policy, 2020) and (National Curriculum Framework, 2023) state importance of Indian art forms in schooling of children in India. To quote (NEP, 2020) "Art-integration is a cross-curricular pedagogical approach that utilizes various aspects and forms of art and culture as the basis for learning of concepts across subjects. As a part of the thrust on experiential learning, art-integrated education will be embedded in classroom transactions…" p. 12

To further strengthen the idea of art in education from (National Curriculum Framework, 2023) on page 27- the skills of arts enhance cultural capacities which is important for all the stages-preparatory, foundational, middle and secondary.

Art forms the mirror of the human psyche and expression of ideas that our normal ways of communication could not explore fully. Art can fulfill the space which is left unexplored by human's rational mind. Indian art forms and knowledge further intrigues the world with its rich heritage and legacy. Indian crafts, folklores and classical system are knowledge systems that enchants the world.